Chapter-2

–द्वितीय,अध्याय–

क::– नाथों, सिद्धों और संतो की वाणियों का दाशनिक विवेचन ।

ख::–नाथों ,सिद्ध और संतो की वाणियों का गुजरात के संतकवियों पर प्रभाव।

क::– नाथों सिद्धों और संतो की वाणियों का दार्शनिक विवेचन–

संसार में ज्ञान की प्राप्ति के लिये तीन महत्वपूर्ण बातें होती है । 1–जिसमें कोई जानने वाला होता है 2–जिसमें कुछ बात जानी जाती है एसे ज्ञाता कहते हैं और उस बात को ज्ञेय कहते है उससे जो जानकारी प्राप्त होती है उसे ज्ञान कहते हैं । इस प्रकार संसार में ज्ञाता ज्ञेय तथा ज्ञान तीन पृथक–पृथक वस्तु है । ज्ञानी पुरुष ही गुरु कहलाता है । अज्ञानी पुरुष शिष्य । भारतीय दर्शनों में यथा विभिन्न संप्रदायों में गुरु का विशेष महत्व रहा है । गुरु को ही ब्रह्मा ,विष्णु,महेश एवं परमब्रह्म की उपाधि से अभिहित किया गया है ।

ज्ञान की सारी कुंजी गुरु के पास होती है गुरु ही समस्त श्रेणियों का मूल है । जिसकी कृपा से संपूर्ण रहस्यों का ज्ञान होता है । दिसप्रकार अंधेरे रात में भटके हुये व्यक्ति को रास्ता जानने वाला उसे रास्ता दिखा देता है उसी प्रकार ज्ञान के मार्ग में भी जिसे संपूर्ण विद्यायें ज्ञात है ,वह अपनें शिष्य को बता देता है । सिद्धों और नाथों में गुरु को बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान दिया है । गुरु गोरखनाथ नें भी गुरु की महिमा को मंडित करते हुये गुरु के बिना ज्ञान की प्रप्ति को असंभव बताया है ।

गुरु ही समस्त श्रेणियों का मूल है इसलिये बहुत सोच समझकर गुरु बनाना चाहिये ।1– एक मात्र अवधूत ही गुरु हो सकता है 'अवधूत' के प्रत्येक वाक्य में वेद निवास करते हैं पद–पद में तीर्थ बसते हैं । प्रत्येक दृष्टि में कैवल्य विराजमान है ,जिसके एक हाथ में त्याग और दूसरे हाथ में भोग है और फिर भी

जो त्याग और भोग दोनों से अलिप्त है । 'सुत संहिता' में कहा गया है कि वह वर्णाश्रम से परे है । समस्त गुरुवों का साक्षत् गुरु है न उससे कोई बड़ा है और न कोई उसके बराबर । इसप्रकार के पक्षपात विर्निमुक्त मुनीश्वर को ही अवधूत कहा जा सकता है । उसे ही नाथ पद प्राप्त हो सकता है । –2 इस अवधूत का परम पुरुषार्थ मुक्ति है जो द्वैत और अद्वैत के द्वंद्व से परे है । अवघूत गीता में कहा गया है कि कुछ लोग अद्वैत को चाहते हैं तो कुछ द्वैत को लेकिन अद्वैत–द्वैत विलक्षण समत्व को कोई नहीं जानता । यदि सर्वगत देव स्थिरपूर्ण और निरंतर है तो यह द्वैताद्वैत कल्पना क्या मोह नही है ? इसीलिये सिद्ध जालंधर नाथ द्वैत और अद्वैत दोनों से परे द्वैताद्वैत विलक्षण कह कर स्तुती की है 3–दैतर्य वाडद्वैतरुपं द्वय उतपरं योगिनं शंकरं वा ।।

खः:– नाथों सिद्धों और संतो की वाणियों में गुरु तत्व की अवधारणा ।

सांम्प्रदायिक ग्रंथों के अंर्तगत नाथ संप्रदाय के विभिन्न प्रकार के नामों का विस्तार मिलता है 'हठयोग' प्रदीपिका की टीका'1–5' में ब्रह्मानन्द जी के मतानुसार सब नाथों में प्रथम आदिनाथ स्वयं शिव का स्थान है यह मत नाथोक्त अथवा नाथो द्वारा कथित है । इस मत का मुख्य धर्म योग अभ्यास करना ही है । यही लोग अपने इस मार्ग को सिद्ध मार्ग या सिद्ध मत बताते हैं क्योंकि इनके मतानुसार नाथ ही सिद्ध हैं । इनके मत का प्रमाणिक ' व निखरा हुआ रुप ' ग्रथ 'सिद्ध सिद्धांत पद्धति है । अठ्ठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में काशी के निवासी बलभद्र पंडित नें संक्षिप्त करके 'सिद्ध सिद्धांत' संग्रह नामक ग्रंथ का निर्माण किया अपनें ग्रंथों के संप्रदाय को ही ये लोग –सिद्धांत ग्रंथ स्वीकार करते हैं । इसीलिये शंकराचार्य अन्त में नाथ संप्रदाय के अनुयायी बने एवं उसी समय काल के अंर्तगत उन्होनें 'सिद्धांत बिन्दु'ग्रंथ की रचना की । अपनें मत को ये 'अवधूति मत' भी सिद्ध करते है कबीर दास जी ने भी इस मत का समर्थन किया है –4 । गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी रामचरित मानस के प्रारम्भ मे ही सिद्ध मत की भक्ति हीनता ही ओर इंगित किया है –5 । गोस्वामी जी

के मतानुसार वे यह भी मानते थे कि गोरखनाथ ने योग को जाग्रित कर भक्ति को दूर किया है ।6– 'सिद्ध सिद्धांत पद्धति' में सिद्ध मत को ही सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया गया है –7। इसीलिये मात्र स्वभाविक आचरण के अनुसार ही सिद्ध–मार्ग का आश्रय लेना ही उचित है । ये सिद्धमार्ग नाथ मत का ही एक मार्ग है । गोरक्ष को इसी कारण से इसे नाथ कहा जाता है । जिनमें 'ना' का अर्थ अनादि 'थ' का अथ स्थापित होना है 8– नाथ के आश्रय से ब्रह्म का साक्षत्कार होता है। इसीलिये 'नाथ ' शब्द का ब्यवहार किया जाता है। 9–
नाथ पंथियों का मुख्य संप्रदाय गोरखनाथी योगियों का है । इन्हें प्रयः कनफटा और दर्शनी साधू कहा है । गोरख पंथी नाथ परंपरा के साधू सारे भारत में पाये जाते हैं पंजाब ,हिमालय ,बंगाल ,गुजरात और महाराष्ट्र में भी ये लोग नाथ कहे जाते थे । ये लोग जो मुद्रा धारण करते है वह दो प्रकार की होती हैं । कुण्डल और दर्शन गोरख संप्रदाय मुख्यतः 12 शाखाओं में विभक्त है इनमें प्रत्येक पंथ विशेष स्थान हैं। जिसे ये लोग अपना पुण्य क्षेत्र मानते है । इन शाखाओं की बहुत सी उपशाखयें हैं । विस्तार के भय से जिसका वर्णन हम नहीं कर सकते ।

ये लोग मेखला ,श्रृगी, सेली , गुजरी ,खप्पर ,कर्ण ,मुद्रा, बघंबर, झोला आदि चिन्ह धारण करते है कान फाड़ कर कुण्डल धारण करने के कारण ये लोग कनफटा कहे जाते हैं । ये साधू लोहे या लकड़ी की शलाकाओं के हेर–फेर से चक्र बनाकर उसके बीच में छेद करते हैं । इस छेद में मालाकार धागे को डाल देते हैं । फिर मंत्र पढ़कर उसे निकाला करते हैं । बिना किया जाने उस चक्र में सहसा कोई डोरी या कौड़ी नहीं निकल सकती । ये सभी वस्तुयें शक्र की शलाकाओं में कुछ इस तरह से उलझ जाती हैं कि वहां से निकालना अत्यंत दुष्कर हो जाता है । दो इस विधि का ज्ञाता है वह सहत ही उसे निकालनें में सफलता प्राप्त कर लेता है । इसी को 'धांधरी' अथवा गोरख धंधा के नाम से भी नाम से जाना जाता है । गोरख पंथियों के मतानुसार मंत्र

पढ़कर गोरख धंधे से डोरा निकालनें से गोरख नाथ की कृपा से ईश्वर प्रसन्न होते हैं , और संसार के चक्रों में उलझे हुये प्रण्रियों को डोरे की भांति ही इस भव जाल से मुक्त कर देते हैं 10— नाद धारण करना अर्थात शिष्य को अपनी उत्पत्ति का कारण नाद को ही समझना चाहिये क्योंकि शब्द गुरु और शिष्य इन योगियों का परंपरागत सिद्धांत रहा हैं । इनके गुरु और पुरोहित ब्रह्मण नहीं होते बल्कि इनकी अपनीं ही जाति के लोग होते हैं ।

हठयोग प्रदीपिका की सूची के अनुसार आदिनाथ ,मत्स्येंद्रनाथ, सारदानन्द ,भैरव ,चौरंगी, मीननाथ, गोरक्षनाथ, विरुपाक्ष, विलेश्य ,मंथान भैरव सिद्धबोध, कन्हड़ीनाथ ,कोरंटक नाथ, सुरानन्द, सिद्धपाद, चर्पटीनाथ ,काणेरीनाथ ,पूज्यपाद ,नित्यनाथ , निरंतननाथ ,कापालिनाथ, विदुनाथ, काकचण्डीश्वर ,मंयनाथ ,अक्षयनाथ ,प्रभुदेव ,घोड़ा चूलीनाथ ,टिप्पडीनाथ ,मल्लरीनाथ नागबोध ,और खण्डकापालिका । इनमें से अनेक सिद्धों के नाम कोई अनुश्रुति शेष नहीं रह गई है । कुछ नाम तान्त्रिकों ,योगियों और निर्गुणिया संतो की परंपरा में बचे हैं और कुछ की अभिन्नता सहजयानी और वज्रयानी सिद्धों से स्थापित की जा सकती है । सबसे आदि में नव मूलनाथ की उत्पत्ति बतायी गयी है 'महार्णव तंत्र ' में नवनाथों को भिन्न—भिन्न दिशाओं में 'ब्यास' करनें की विधि बतायी गयी है । उसपर से नवनाथों के नाम इस प्रकार से ज्ञात होते हैं जैसे गोरक्ष नाथ ,जालंधरनाथ, नागार्जुन, सहस्त्रार्जुन, दत्तात्रेय ,देवदत्त, जड़भरत, आदिनाथ, और मत्स्येंद्रनाथ, कापालिको के बारह शिष्यों की चर्चा के अंतर्गत ऐसे कई नाम हैं जिनका नाम 'हठयोग प्रदीपिका'के सिद्ध योगियों से अभिन्न है । 11—

'ललिता सहस्त्र नाम'12— में तीन प्रकार के गुरु बताये गये हैं — दिव्य, सिद्ध और मानव ,'तारा सहस्य'13— में दो प्रकार के गुरुवों का उल्लेख मिलता है ,दिव्य और मानव । प्रथम श्रेणी में चार है और द्वितीय श्रेणी में आठ । मान्‍ दिव्य गुरु की श्रेणी में आता है —

मत्स्येंद्र नाथ के उद्धार करके इसी मत में लौटा दिया गया था । कुण्डली योग या कुण्डलनी योग प्रर्वती नाथ पंथियों की सर्वमान्य साधना है । कुण्डली और सहज ये दोनों कौल मार्ग में विहित हैं ।' कौल ज्ञान निर्णय' मत्स्येंद्र नाथ द्वारा प्रवर्तित योगिनी कौल का द्योतक है । कौल मार्ग का उपासना पद्धति का वर्णन कौल उपनिषद में दिया गया है इस उपनिषद के पढ़ने से इस मत के साधको का अडिग विश्वास और रुढ़ विरोधी मनोभाव स्पष्ट हो जाता है ब्रह्मका विचार हो जने के बाद ही ब्रह्मशक्ति की जिज्ञासा उत्पन्न होती है । ज्ञान ही मोक्षक द्वार तक पहुंचाने वाला सर्वात्मा सिद्धि का कारण है । अनात्मा में आत्म बुद्धि आत्मा में अनात्म बुद्धि ,जीवों में परस्पर ज्ञान भेद ,उपास्य और उपासक में बुद्धि भेद ,जीवों में परस्पर ज्ञान भेद ,उपास्य और उपासक में बुद्धि भेद , ईश्वर से आत्मा को पृथ समझना ये सभी ब्रह्मशक्ति के विलास हैं । जो मनुष्य के जन्म–मरण के चक्रों के कारण सिद्ध होते हैं । इस मार्ग में गुरु एक ही होता है । गुरु अपना रहस्य मात्र योग्य शिष्य को ही बतलाता है । ये भतर से शक्त बाहर से शैव और लोक में वैष्णव होकर विचरण करना ही अपना आचार समझते है। । कौल मार्ग में लोक निन्दा वर्जनीय है । अध्यात्म में व्रताचरण ,नियम का पालन मोक्ष के बोधक हैं । कभी कौल मार्ग की स्थापना नहीं करनी चाहिये बल्कि सब में समभाव रखना चहिये दही कौल उपनिषद का मर्म है उसके रहस्य को निम्नानुसार विभक्त किया गया है जैसे दार्शनिक अर्थ,वेशपरक अर्थ रहस्यपरक अर्थ ,योग्यपरक अर्थ इत्यादि संसार के सभी पदार्थ ज्ञाता 'श्रेय' ज्ञेय और ज्ञान में ही संलग्न है। । ज्ञान स्वप्रकाशित है जगत जो त्रिपुटीकृत स्वरुप समस्त पर्दाथ ज्ञान रुप धर्म के एक होने के कारण 'सजातीय 'हैं जिससे इन्हें कुल भी कहा जाता है कुल संबंधी ज्ञान ही 'कौल ज्ञान' कहलाता है अर्थात ब्रह्म ज्ञान स्वरुप है । परिपूर्ण 'अद्वैतज्ञान ' ही कौल ज्ञान है । 16– कुल शब्द का अर्थ है वंश , जो किसी दो प्रकार का है जैसे विद्या से और जन्म से । 'गोरक्ष सिद्धांत 'संग्रह के अर्न्तगत इसे नादरुपा और बिन्दुरुपा कहा गया है । नादरुपा सृष्टि गुरु परंपरा और बिन्दुरुपा जन्म पंरपरा

से 17— इस मार्ग में परं शिव से लेकर परम गुरु तक चली आती हुई ज्ञान परंपरा को ही प्रधान्य दिया गया है । उपास्य भी चेतन है उपासक भी चेतन हैं । इन दोनों को एक ही 'कुल' की वस्तु बताने वाले शास्त्र कुल शास्त्र कहलाते हैं । 'सौभाग्य भास्कर 'पृ.35—में उल्लेख के अनुसार 'कु' का अर्थ पृथ्वी और 'ल' का अर्थ लीन होना है । पृथ्वी तत्व मूलाधार चक्र में लीन रहता है । मुलाधार से सुषुम्ना—नाड़ी मिली रहती है जिसके भीतर से उठकर कुण्डलिनी सहस्रार चक्र में परमशिव से सारस्य करती है इसीलिये लक्षणा पृत्ति से सुषुम्ना को भी 'कुल' कहते हैं 18— 'तत्वसार' ग्रंथ के अनुसार कुण्डलिनी को ही शक्ति रुप बताया है। शक्ति ही सृष्टि है सृष्टि ही कृण्डली 19— जिसे 'कुल कुण्डलिनी ' के नाम से भी जाना जाता है ।

MEHTA LIBRARY

खः:— नाथों सिद्धों और संतो की वाणियों का गुजरात के संत कवियों पर प्रभाव

नाथों सिद्धों और संतों की वानियों में 'गुरुदेव' के अंग' को सर्वप्रथम स्थान दिया जाता है यह उनके अतुल महत्व का परिचायक है जहा तक गुरु के लक्षण ,शिष्य के लक्षण आदि अंगों का प्रश्न है वे तांत्रिक ग्रंथों की अनुसरण —परंपरा का आभास देते हैं यद्यपि इन संतो का गुरु न तांत्रिक गुरु है और न बज्रयानी वह निरसंदेह ऐसे गुरु है जिसनें शब्द सुरत योग और भक्ति योग इन दोनों की समन्वित साधना की है क्योंकि उसनें शिष्य को भी दोनों ही पद्धतियों का उपदेश दिया है ।

योग—दौ लागी साइर जल्या पंषी बैठे आइ।
दाधी देह न पलवै सतगुरु गया लगाय।।
भक्ति— सतगुरु हमसूं रीझिकर एक कहा परसंग।
बरसा बादल प्रेम का भीजि गया सब अंग ।।

भक्ति और योगमार्ग का यह पूर्ण एकात्म राघवानन्द तथा रामानन्द की गुरु परंपरा की ओर संकेत करता है क्योंकि उनके मार्ग में अवधूतों की योग पद्धति तथा वैष्णव भक्ति इन दोनों का समन्वय हो गया था ।

इस पंकार गुरु के महत्व की परंपरा संतो ने वज्रयानी सिद्धों से नही ली

थी गुरु–वचन के लिये वाण का उपमान तथा वज्रविशेषण अवश्य सिद्धों तथा संतो में समान् रुप में मिलते है चार्यापदों में गुरु–वचनों को वाण या वज्रकुठार बतायागया है जिसपर हम पीछे विचार कर चुके है संतो नें भी यह उपमान प्रयुक्त हुआ है ।

गुरु कै वाणी बजर कल छेदी प्रगटिया पदु परसागा।
सकति अधेर जेवड़ी भ्रमु चूका निहचलुसिब धरि वासा।।
सतगुरु मारया बाणि भरि धरि करि सुधि मूठि।
अंगी उघाड़ै लागिया गई दवा सूं फूटि ।।

अद्वय वज्र नें अपने प्रेमपंचक में सद्गुरु को दूती बताया है जो वधू प्रज्ञा तथा वर उपाय की मध्यस्थता कर दोनों का मिलन सम्पन्न करा देता है । संतों में ज्ञान वधू तथा साधकरुपी वर का मध्यस्थ गुरु को माना गया है ।

सन्तन किया बियाह दुलहिनी ज्ञान की ।
सतगुरु दिया कराय बेटी जजमान की ।

अनाड़ी गुरु के निषेध का एक दोहा तो सरहपा, कबीर,दादू तथा अन्य कितने ही संतो ने बिलकुल समान रुप केमिलता हैं ।

सरइपा बात अप्पा जाणिजइ तावण सिस्स करेइ
अंधे अंध कढ़ावइ तिम वेठाण वि इप पड़ेइ ।

कबीर :– जाका गुरु भी अन्धता चेला खरा निरन्थ
अन्धै अन्धा ठेलिया इन्दूं कूप पड़न्त ।

दादू :– अन्धे अन्धा मिलि चले दादू बांधि कतार ।
छप पड़े हम देसता अंधे अंधा लार ।।

समस्त तान्त्रिक साधनाओं में गुरु का विशेष महत्व है क्योकि तन्त्र,योग तथा अनुष्ठानों को विशेष महत्व देते देते हैं ये योग तथा अनुष्ठान दुरुह तथा अगन्य है और अज्ञानी व्यक्ति इनकी साधना नहीं कर सकता । साधना की इस दुरुहता के अतरिक्त गुरु की महत्ता में इस अद्भुद वृद्धि का एक दूसरा रहस्य

भी है । तन्त्र संप्रदाय नये सम्प्रदाय थे और दनके प्रवर्तक अधिकांश या तो अब्राह्मण थे या ऐसे ब्रह्मण जो कर्मकाण्डी वैदिक ब्रह्मणों द्वारा हेय समझे जाते थे । अतः अपनी स्थिति सुदृढ़ बनाने के लिये और अपने प्रतिद्वंदी वैदिक ब्राह्मण आचार्यों को पराजित करने के लिये उन्होनेअपने संप्रदाय और अपने शिष्यों का समुचित संगठन करना चाहा होगा जो गुरु के प्रति अटूट श्रद्धा के बिना असंभव है यह प्रतिद्वंदिता कभी–कभी जातीय और कभी–कभी स्थानीय आधार पर चलती होगी । यही कारण है कि तन्त्र कई कान्ताओं में विभाजित थे और कहीं–कही तन्त्रों में इस प्रकार निर्णय मिलते हैं कि यहां गुरु श्रेष्ठ होते हैं उस प्रदेश के अतिरिक्त प्रदेशों के गुरु द्वितीय अथवा तृतीय श्रेणी मे बताये गये हैं।

बौद्धों में ज्यो–ज्यो तान्त्रिक प्रवृत्तियों का प्रवेश होता गया त्यों–त्यों गुरुओं का महत्व बढना स्वाभाविक हैं । अनंगवज्र ने तो गुरु की महत्ता का कारण ही यह बताया है कि वे सामान्य होते थे अर्थात विभिन्न श्रम्नाथों का भेद जानते है और अपने आम्नाथ में शिष्य को दीक्षित कर वे उसे निर्वाण और भव दोनों से विमुक्त कर प्रज्ञोपायात्मक सहत सुख में प्रतिष्ठत कर देते थे वसुधातल पर यह तत्व केवल गुरु जानता है । अतः सिद्धि के लिये उसकी उपासना करनी आवश्यक है । इसीलिये तत्व रत्न वही प्राप्त करते हैं जो आम्नाय में दीक्षित होकर वज्राचार्यों की उपासना करते हैं । गुरु समाज 'तंत्र में तो प्रत्येक तथागत उसकी पूजा करते हैं । क्योंकि तथागत तो केवल बौद्ध भी है धर्म भी है । इसीलिये आर्यदेव ने उसकी छाया का उल्लंघन भी वर्जित ठहराया है । ऐसे गुरु के प्रति श्रद्धा आवश्यक है क्योंकि जैसे जलमणि मलीन जल को भी स्वच्छ कर देती है उसी प्रकार गुरु के प्रति श्रद्धा रुपी मणि भी चित्त को विशुद्ध कर देती है इस प्रकार यह चित्त–विशुद्धि बिना गुरु के असंभव है और गुरु का इतना महत्व है ।

किन्तु इसके साथ ही साथ सिद्ध स्पष्ट संकेत करते हैं कि गुरु वही होना चाहिये जो सहज साधना में निष्णात हो या अनंगवज्र के शब्दों में

प्रज्ञोपायोपदेशक हो ,अन्यथा गुरु और शिष्य दोनों की वैसी परिस्थिति होगी जैसे अंधा अंधे को खींचता है और दोनो कूप में जा गिरते हैं । पृ.सं.168,

साधना में प्रवृत्ति होने के लिये गुरु कर लेना आवश्यक है क्योंकि मध्यकालीन योग तथा तन्त्र साधनाओं में यह सर्वमान्य धारणा थी कि कभी भी निगुरे को सिद्धि प्राप्त नही हो सकती । बाद में जिन संप्रदायों में योग तथा तंत्र की गुह्य साधनाओं का परित्याग भी कर दिया गया है । उनमें गुरु का महत्व परंपरागत रुढ़ि सा बन गया है । कबीर तथा अन्य सभी परवर्ती संतो नें गुरु का महत्व बराबर स्वीकार किया है । किन्तु गोरखपंथी बानियों तथा संतों की वानियों का गुरु योगशस्त्र का ज्ञाता है संतो का गुरु वैष्णव है और शब्द सुरति के साथ–साथ वह हरिभक्ति का भी मधुर उपदेश देता है गुरु के विषय में श्रद्धा इतनी प्रचलित थी अतः संतो ने या नाथपंथियों नें यह वज्रयानी सिद्धों से ही प्रभावित होकर ग्रहण की इसका कोई प्रमाण नहीं है हॉ नाथ पंथियों मे कई स्थलों पर ऐसा ज्ञात होता है कि शिष्य गोरखनाथ अपने गुरु मछीन्द्रनाथ को उपदेश दे रहे है । यह परंपरा विरुद्ध सी बात लगती है किन्तु इसके मूल में संभवतः उस घटना की स्मृति है जिसमें कहा जाता है कि गोरख नाथ नें योगिनियों के जाल से मछीन्द्र को मुक्त कराकर तान्त्रिक अनुष्ठानों का बहिष्कार किया था ।

सहज बोधि का समुत्पारक गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान के बिना असंभव है । इसी लिये सिद्धों की साधना पद्धति में समस्त तांत्रिक पद्धतियों की ही भांति गुरु अद्‌भुद महत्व है गुरु के प्रति अपनी अटल भक्ति का प्रमाण सिद्धों नें कई प्रकार से दिया है । तिलोधा कहते हैं कि समस्त लोक तथा पंडितों के लिये भी परम तत्व अगम अगोचर है। किन्तु गुरु के प्रसन्न होने पर कौन ऐसी वस्तु है जो अगम रह जाये । आगमन तथा निगमन से रहित 'तथता' केवल गुरु के ही उपदेश से हृदय में प्रविष्ट हो सकती है ।

सरहपा भी सदगुरु के वचनों से ही परम गुह्य सत्य का स्कूट रुप से प्रतिभासित होना मानते है । वह परम् तत्व इस प्रकार नही दीख पड़ता किन्तु

केवल एक गुरु ऐसे हैं जो उसे प्रदर्शित कराते हैं । साधक तो मूर्ख बालक के समान है जो जगत प्रवाह में बहता चला जारहा है किन्तु यदि गुरु के वचन हृदय में प्रवेश कर जाय तो निश्चित रुप से साधक को इष्ट हस्तगत हो जाता है । जहां इन्द्रियां अपना धर्म छोड़कर प्रज्ञोपाय में विलयित हो जाती है उस सहज उस महा सुखकाया का भेद गुरु से ही पूछकर स्पष्ट जाना जा सकता है । केवल गुरु के वचनों पर से ही सत्य पर प्रत्यय किया जा सकता है यही नही साधना पद्धति में भी गुरु की सहायता अनिवार्य है गुरु द्वारा प्रदत्त बोध से ही चित्त का निरोध और पवन का श्वास निरोध होता है गुरु के उपदेश से ही साधक अजर अमर हो जाता है । विरले ही यह भेद जानते है कि गुरु के उपदेशों से ही पुण्यों की प्राप्ति होती है –20 वास्तव में सद्गुरु के वचन तो भवसागर के पार उतारने वाली नौका के पतवार है जिन्हें धारण कर साधना प्रारम्भ की जाती है ।

शबरपा अपनी रुपक शैली में गुरु के वचनों को धनुष मानते हैं जिसपर उन्होने अपने बोधिचित्त रुपी वाण का संधान कर एक ही बार में भव और निर्वाण दोनों का वेघ दिया है ।

लुइपा भी समस्त ज्ञान की गुरु से ही प्राप्ति बताते हैं कारहपा भी वज्ररुपी कुठार से भवरुपी वृक्ष का उन्मूलन करने का पक्ष लेते हैं ।

सिद्धों के उपरोक्त कथनों से विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि गुरु के महत्व के निम्नलिखित कारण है ।

क::– गुरु जगत प्रवाह में बहते हुये साधक को निरुद्ध कर लेता है ।

ख::– जो तत्व शिष्य अपनी अज्ञानता के कारण नही ग्रहण कर पाता वह गुरु की प्रसन्नता से सहज ही प्राप्त हो जाता है ।

ग::– साधना में गुरु के वचन पतवार के समान रहते है। वह शिष्य की साधना का निर्देशन करता रहता है ।

इन्ही उपरोक्त कारणों से सिद्धों ने गुरु का नाम सदैव आदर से लिया

है 'वरगुरुपाद' या 'श्रीगुरुनाथ' का प्रयोग तो मिलता ही है सरहपा एक स्थान पर गुरु को तथागत वज्रधर बताते हैं । अतः शिष्य को उनके चरणों की अराधना करनी चाहिये । गुरु के सामने मुग्ध बालक की भांति सरल चित्त से रहना चाहिये तभी संहज उल्लास की अनुश्रुति होती है ।

सिद्धों में गुरु के प्रति यह अटल भक्ति तांत्रिक होने के ही नाते थी बौद्ध होने के नाते नही । क्योंकि बौद्धों में संघ को महत्व दिया गया था गुरु को इतना महत्व नहीं मिला था कहा जाता है कि एकबार बुद्ध से किसी ने पूछा कि आपका गुरु कौन है तो उन्होनें उत्तर दिया था 'मैने सबको पराभूत कर लिया है ' मै सर्वविद् हूँ सब धर्मो में निर्लिप्त हूँ सबका मैने परित्याग किया है , मेरी असमस्त तृष्णाओं का क्षय हो चुका है किन्तु यह मेरे निजी अभिज्ञान का फल है , इसमें किसी के उपदेश का क्या । मेरा गुरु कौन है ?

किन्तु ज्यों–ज्यों महायानी परंपरा में बौद्ध धर्म तर्कशीलता छोड़कर साधना और अनुभूति –परक होता गया त्यों–त्यों बौद्ध धर्म में गुरु का महत्व बढ़ता गया । देहधारी 'सतगुरु'ही परमात्मा रुप धारण कर चुका है । संत कबीर द्वारा किये गये सब कथनों के ही अनुसार 'सतगुरु' को स्वयं परमात्मा तत्व मान लेने की ओर प्रवृत्ति किया गया है –21। संत तुलसीदास तक आते–आते ऐसा भी आभास होता है कि वह उनकी सहायता किसी विलक्षण रुप में कर चुका है तथा वही फिर संत शिव नारायण के सामने किसी दिव्य रुप में उपस्थित हो जाता है । इन्हें यहां पर कई स्पष्ट शब्दों मे बतलाता है । तथा इन्हें उपदेश तक देने लगता है । इस प्रकार एक ओर जहां संत कबीर की बानियों के अंतर्गत 'सतगुरुतत्व' नें कभी किसी महत्वपूर्ण माध्यम के रुप में कोई अनिर्दिष्ट शरीर धारी रुप ग्रहण कर रखा था –22। वही फिर दूसरी ओर आगे संत शिवदयाल की पंक्तियों में आकर स्वयं परमात्मा स्वरुप ग्रहण कर लेता जान पड़ता है । उसी प्रकार जहां एक ओर उसे हमनें उन्हीं संत कबीर के यहां कभी एक साथ स्वयं साध्य परंतत्व के रुप में भी देखा था वहां दूसरी ओर

संत 'शिव नारायण' के यहां कोई दिव्य रुप धारण कर आ जाता प्रतीत होता है –23। परंतु जहां तक ज्ञात होता है संत कबीर द्वारा प्रदान किये गये 'ज्ञान अथवा विवेक ' जैसे रुपों में साधारणतः भविष्य में कोई 'विकास अथवा परिवर्तन नही पाया गया –24। उनकी तद्विषयक भावना में भी कोई अंतर नहीं दिखाई पड़ता है जिसके परिणाम स्वरुप उन्होनें कभी उसको एक ही साथ अपनें भीतर 'चेला एवं गुरु' दोनों होना बतलाया था । अथवा क्या उनमें कोई वास्तविक अन्तर है भी या नहीं पूर्ववर्ती संत कवियों की विचारधारा को ध्यान में रखते हुये उन विशिष्ट मतो पर दृष्टिपात करलें जो पहले प्रचलित रहते आये थे । इस संबन्ध में महाराष्ट्र वाले वारकरी सन्तो महानुभाव पंथियों से लेकर वैदिक युगीन उपनिषदों वाले ऋषियों तक के अभिमतों का यथेष्ट सहारा ले सकते हैं। मराठी संत नामदेव ने किस प्रकार अपने गुरू तिरबोबा खेचर के चरणों में अपनी भक्ति प्रदर्शित की है।इनके प्रसिद्ध और समकालीन संत ज्ञानदेव नें अपने सद्‌गुरु निवृत्ति के नाथ के प्रति अपने हृदयोद्‌गार प्रकट किये हैं कि मै अपने आध्यात्म गुरु निवृत्तिनाथ को प्रणाम करता हूँ जिसने माया के मत्तगज को मारकर उसके मस्तक वाले मुक्ताओं का भरा थाल मेरे आगे रखदिया हैं । एकांत व अकेले रहने का आनंद न पाकर स्वयं विशुद्ध परमात्म तत्व अपने–आप को गुरु एवं शिष्य के रुप धारण कर देख रहा है । 'हे सद्‌गुरु ' मै तुझ रहस्यमय को किस प्रकार समझ सकूं ,तू तो किसी भी भावना द्वारा अनुमित नहीं किया जा सकता है । संक्षेप में इन शब्दों द्वारा मैने द्वैत भाव का निराकरण करके अपनें प्रिय सखा के प्रति अपनी अभ्यर्थना उसके श्री गुरु रुप में की है । 25– महानुभाव संप्रदाय के अनुसार अपनें गुरु के प्रति यथेष्ठा भक्ति एवं निष्ठा का होना परम आवश्यक है यहां तक की श्री चक्रधर स्वामी नें भी इसका आदर्श बतलाते समय 'कणरी की गुरु भक्ति का दृष्टांत उपस्थित किया है तिसमें अवसर आजाने पर अपनें गुरु नागार्जुन के लिये अपनीं आखें तक भी अर्पित कर दी थी 26–

दक्षिण भारत के कन्नड़ संत कवियों की रचनाओं में हम गुरुतत्व के विषय में लगभग ऐसी ही बातों की चर्चा की गई पाते है जिसमें यह कहना निरर्थक नहीं होगा कि वहां पर भी तत्वतः एक ही प्रकार की भावना काम कर चुकी है डॉ. रानडे के कथनानुसार 'भक्तारक' नामधारी संतकवि की 'क्या सतगुरु स्वयं परमात्मा ही नही है ? से आरम्भ होने वाली रचना की व्याख्या से यह बतलाया गया है कि यही बात का स्पष्टी करण मराठी संत ज्ञानदेव तथा हिन्दी संतकवि कबीर की पंक्तियों में भी प्रायः एक समान लक्षित होती है 27–उनका मत है कि यही बात पहली बात है जिसके संबध में गुरु सिद्ध कवि नें भी रचना की है । 28– इसके साथ उन्होनें यह भी लिखा है कि प्रसिद्ध वीरशैव बसबेश्वर के अनुसार ऐसे शिष्य भक्त के लिये आवश्यक है कि वह अपनें इष्टदेव परमात्मा के प्रति पूर्णरुप से उन्मुख बना रहे ,बिना भाव एवं भक्ति दोनों के रहते कभी साधना में सफलता नही मिलती 29–वास्तव में वीर शैव अथवा लियागत सप्रदाय के अंर्तगत भी गुरु तत्व को बड़ा महत्व दिया गया है । 'गुरु कारुण्य स्थल' के प्रसंग में कहा गया है कि 'तैसे कोई व्यक्ति अपना मुख देखनें के लिये दर्पण का सहारा लेता है वैसे ही शिष्य गुरु का सहारा लेता है अर्थात वह गुरु की शरण में जाता है शरणागत शिष्य को गुरु उपदेश देकर उसे स्वरुप का साक्षात्कार कराते हैं । 30– संत प्रभुदास का कथन है 'दृश्य को ग्रहण न करके लोग अदृश्य को ग्रहण करनें की इच्छा करते हैं और उनकी अप्राप्ति से विरहाकुल होते है गुहेश्वर दृष्ट गुरु के पादारविन्द को देखकर उसी का आश्रय करनें से अदृश्य को भी देख सकते हैं ।–31

'.जिसप्रकार अग्निगत कर्पूर अग्नि के रुप में ही दिखाई देता है न कि कर्पूर के रुप में एवं जलगत लवण जल के रुप में ही ज्ञात होता है न कि लवण के रुप में उसी प्रकार श्री गुरुतत्व में वर्तमान शिष्य गुरु तत्व स्वरुप ही है । .... मै, गुरु और शिष्य के संबंध को खोजने गया जो स्वयं गुरु बन गया ,और स्वयं शिष्य बन गया और 'निर्भाव' तक बन गया ।32–

इसके पूर्व नाथ साहित्य मे भी गुरु द्वारा पथ प्रदर्शन प्राप्त करना

अत्यंत आवश्यक है । गुरु गोरख नाथ के कथनानुसार 'आकाश मंडल में जो अमृत भरा औंधा कुआं है उससे केवल वही भरकर प्याली पी सकता है जिसनें गुरु की शरण ली हो अन्यथा 'निगुरा' तो प्यासा ही रह जायेगा –33 ।

गगन मंडल में उधव कुआं तहां अमृत का वासा ।
सगुरा होइ सो भरि–भरि पीवै ,निगुरा जाइ पियासा ।।
गोरख वानी पृ.6

आशा में जो आपदा रहती है और संदेह में जो शोक रहता है वे दोनों बड़े–बड़े रोग केवल गुरु के मुख से शिक्षा प्राप्त करलेने पर ही दूर हो पाते हैं । 34– सतगुरु का बतलाया हुआ यह मार्ग खड्ग से भी अधिक तीक्ष्ण और कठिन है –। 35 वही एक ऐसा है जो त्रिगुणात्मिका माया के विषय मे विवेक उत्पन्न करा सकता है ।36 इन्होनें अपनी प्राण संकली नामक रचना का आरम्भ करते समय सर्व प्रथम उन गुरु चरणो को ही प्रणाम किया है जिनके द्वारा इन्हें आत्म ब्रह्म का साक्षात्कार हुआ । उस ' सबद' को गुरु द्वारा बतलाते ही इन्होंने समझ लिया एवं तीनों लोको का ज्ञान उस मणि दीप के सहारे हो गया । 37 इन्होने अपने को ' मछिन्द्र का दास ' मछिन्द्रनाथ का ' पूता' तथा ' मछिन्द्र प्रसाद ' के बल पर इडा और पिंगला के बीच अपना खेल करना तक बतलाया है । अपनी किसी रचना के अनुसार " कि किस प्रकार वे (मछिन्द्र) स्वयं किसी समय भ्रान्ति में पड़ गये थे –38 । फिर भी ये अन्यत्र आत्मतत्व को ही गुरु देव स्वं भू (शिव) तथा अपने भीतर निवास करने वाला देव ठहराते हैं । 39 ' अलख ' गुरु का नाम लेते हैं । सब चेलों को सो जाने पर भी ' नाथ गुरु' के बराबर जरगरित अवस्था में बने रहने की चर्चा करते हैं । 40

बौद्ध सिद्धों की उपलब्ध रचनाओं के अन्तर्गत भी गुरु तत्व की चर्चा वृहद रुप में का गयी है । सिद्ध सरहपा के कथानुसार " यदि गुरु का उपदेश हृदय में जम जाये तो निश्चय है कि अमीष्ट हाथ लग जायेगा । "41 केवल

गुरु उपदेश द्वारा ही वह दृष्टि गोचर होता है इसका दूसरा कोई उपाय नहीं है । 42 सिद्ध डोम्बीया के कथनानुसार श्री गुरु चरणों की कृपा से मैं जिनपुर तक भी जा पाउँगा । 43

मूसुकुषा के कथनानुसार 'मन--मूषक तबतक चंचल बना रहा करता है जबतक समगुरु उसे शांत न करे । 44-- सिद्धशबरथा के कथनानुसार "गुरु उपदेश के धनुष पर बाण चढ़ाकर अपने मन को बेध डालो" । 45-- सिद्धकांगलिया के अनुसार "सद्‌गुरु के उपदेश ग्रहण करके तुम अपनी जीवन--नौका खोल दो ,बिना ऐसा किये कृतकार्य नहीं हो पाओगे" । 46-- सिन्दू दारकपा के कथनानुसार "सिद्ध लुइया के चरणों की सहायता से द्वादश भुवनों को प्राप्त कर लिया" । 47-- सिद्ध कण्हपा के कथनानुसार " मेरे कथन की प्रामाणिकता में जालंधरिया की साक्षी दी जा सकती है" । 48-- सिद्ध कवियों के सामने भी दनके शरीरधारी सद्‌गुरु के उपदेश का महत्व ही काम करता जान पड़ता है जिसके परिणाम स्वरुप सरिपुत्त नें अपनें सर्वप्रथम गुरु अश्वजीत तथा उनके वचनों का पालन व अपना गम्भीर सम्मान प्रकट किया था। 49-- संत साहित्य के प्रसिद्ध एवं प्रमुख निर्माता सिख गुरुवों की वाणियों को ही प्रमुख महत्व दिया गया । पहले उनकी दस पीढ़ियों तक ,उनके पश्चात उनकी वानियों को ही 'गुरु ग्रंथ साहब 'का रुप दे दिया गया । इसमें 'अकाल' पुरुष की 'आज्ञा' के रुप में स्वीकार कर लिया गया । सभी सिख 'ग्रंथ' को ही गुरु माने उसे प्रत्यक्ष गुरुदेव की देह समझे तथा उस प्रभु को मिल लेना भी चाहें तो उसे 'ग्रंथ' के शब्दों में ही ढूढ ले । 50-- दसम गुरु गोविन्द सिंह नें इतना और भी स्पष्ट कर दिया कि गुरु नानक देव ने गुरु अंगद का रुप धारण किया था । इसी प्रकार कमशः गुरु अमरदास ,गुरु रामदास ,आदि ने भी अपने उत्तराधिकारियों के रुपों में आकर कार्य किया था । उन सभी का एक दूसरे के साथ ठीक वही संबंध रहा जैसा किसी एक दीपक द्वारा जलाये गये अन्य दीपक का । 51-- जैन मुनियों मुनिराम के कथनानुसार " लोग तभीतक तीर्थादि

तीर्थादि में व्यस्त रहा करते है जब तक वे गुरुकृपा द्वारा देह के ही भीतर 'देव को नहीं जान पाते "। 52– तथा " जो किसी प्रकार भी लिखा वा पूछा नही जाता और न चित्त में ठहर पाता है वह केवल गुरु के उपदेश द्वारा अपनें इस अनुभव मे आ जाता है कि वह कही भी स्थित है "। 53– "वास्तव में सूर्य,चन्द्र, दीपक, एवं देव जो कुछ भी हमें आत्मा एवं पर का भेद दर्शाते है वे गुरु है । "54– अन्ततः 'न तो हं पंडित है ,न मूर्ख ,न ईश्वर है न अनीश , न गुरु है न शिष्य , सबमें कर्म की विशेषता दीख पड़ती है "। 55– कवि 'आणंदा' के कथनानुसार "गुरु ही जिनवर है ,वही सिद्ध है और वही शिव है तथा रत्नमय का सार भी है ,क्योंकि वही 'अप्प' और 'पर' को दरसा देता है । जिसमें भवजल को पार उतारा जा सकता है "। 56– कुन्द कुन्दाचार्य तो अरहन्त, सिद्ध, आचार्य , उपाध्याय, एवं साधू को पंच गुरुओं के रुप में ध्यान–योग्य बतलाया है इनकी शरण में जाना सभी प्रकार से कल्याणकारी बतलाया है । 57–

जैन भक्त कवियों से पूर्ववर्ती 'मधुर कवि' आलचार कवि के कथनानुसार 'गुरु का नाम लेते ही मेरी जिह्व –आस्वादन जैसा आनन्द प्राप्त करती है । 58– पेरियालवार के कथनानुसार गुंरु की कृपा प्राप्त करके उसके अनुसार न चलनें वाला अपने मां को कलंकित करता है । 59– 'भक्त एम्बार' के लिये कहा जाता है कि उसनें स्वयं विश्वात्मा ब्रह्म का ही सब किसी के हृदयों में विराजमान रहना तथा सर्वप्रथम गुरुदेव के रुप में अदृष्य रहते हुये भी ,उसका इस प्रकार संकेत करते रहना बतलाया है । प्रत्यक्ष गुरु की ओर से जो भी कोई सेवा कार्य निर्दिष्ट किया जाय उसका पालन करना हमारा परम कर्तव्य हुआ करता है । 60–

तांत्रिक मतानुसार शरीर धारी गुरु वस्तुतः स्वयं महाकाल शिव का प्रत्यक्ष रुप है जो भौतिक गुरु में प्रवेश कर इसके शब्दों के माध्यम द्वारा शिष्य को दीक्षित किया करता है । अभिनव गुप्त के प्रसिद्ध ग्रंथ 'तंत्र सार ' के अनुसार शरीर धारी गुरु के लिये यह आवश्यक होता है कि शिष्य को दीक्षा

प्रदान करते समय अपने भीतर 'गुरु जीवन धारण कर ले । 61– जिसप्रकार कोई दीपक वाली लौ के द्वारा प्रज्वलित कर दिया जाता है ,उसी प्रकार गुरु में निहित दिव्य शक्ति के माध्यम से शिष्य भी शक्ति संपन्न हो जाता है । 62– सबद ही वास्तविक गुरु है जिस कारण कभी 'सबद गुरु का चेला' तक कहा गया मिलता है । संत कबीर नें भक्त नारद का नाम श्रद्धा से कई बार लिया है । अपना 'शरीर मगन' बनाये रखकर भवसागर को पार करने के लिये उन्होनें दूसरों को सलाह भी दी है । 63– इस कारणवश हमारा ध्यान स्वभावतः गुरु तत्व के उसी स्वरुप की ओर भी आकृष्ट हो जा सकता है जिसका परिचय 'नारद पांचरात्र' में दिया गया मिलता है । " हमारे सिर में अवस्थित सहस्त्रार के भीतर गुरु सदा सूक्ष्म रुप में निवास करता है जिसका प्रतिरुप सर्वत्र मानवीय रुप में भी लक्षित होता है । शिष्यों का कल्याण करनें के उद्देश्य से स्वयं कृष्ण ही गुरु के रुप में विद्यमान है । 64–

भगवान स्वयं गुरु देव हैं तथा गुरु पुज्य एवं सर्वश्रेष्ठसे भी श्रेष्ठवर है । यदि हरि रुठ जायं किन्तु गुरु प्रसन्न रहे तो स्वयं रक्षक भगवान भी प्रसन्न हो जाता है किन्तु यदि सभी कोई प्रसन्न रहें किन्तु गुरु रुठ जाय तो ,कभी रक्षा नहीं की जा सकती । 65– इस प्रकार यहा पर भी एक ओर जहां स्वयं भगवान को ही सद्गुरु के रुप में स्वीकार किया गया पाया जाता है वहां दूसरी ओर गुरु उससे पृथक मानते हुये इसे उससे कुछ विशेष महत्व प्रदान किया गया जान पड़ता है । तंत्र साहित्य के अंतर्गत यदि कोई साधक अपनें गुरु की पूजा किये बिना ही अपने ईष्टदेव की पूजा करता है जो उसके मंत्र के तेज को स्वयं भैरव हरण कर लिया करते है । 66– वैदिक साहित्य के अनुसार 'कठोपनिषद ' के अंतर्गत कहा गया है कि "आत्म तत्व' सहज में ही समझ में आ जाने वाली बात नहीं , वह कौर चिन्तन द्वारा भी नहीं जाना जा सकता । इस गति का होना तबतक संभव नहीं जबतक अन्य जानकार महापुरुष बतला न दे । 67– 'श्वेताश्वर उपनिषद के अनुसार 'यह रहस्य केवल उसी के हृदय में प्रकट

हो पाता है जिसकी भक्ति परम परमेंश्वर में हो उतनी ही अपनें गुरु में भी हो। 68– निरुक्तकार यास्य नें गुरु–शिष्य के ऐसे संबंध पर प्रकाश डालते हुये कहा है कि गुरु पहले सत्य की कुरेदनी को लेकर शिष्य के कानों में कुरेदता है जिससे उसके भीतर का सारा अज्ञान विषयक मल दूर हो जाये और तत्पश्चात वह उसे बिना किसी प्रकार का दुःख पहुंचाये अमृतमयी उत्तम बातें भर दिया करता है । " 69– किसी भक्त नें अपनें गुरु की वन्दना करते हुये कहा है कि 'जिस गुरु नें मुझ अज्ञानन्धकार में पड़े हुये तिमिरानन्द की आखें ज्ञान की श्लाकायें अर्थात आंखों में अंजन लगानें की सलाई के द्वारा ,उन्मीलित कर दी है उन्हें मै नमस्कार करता हूँ। "70– पारसियों के जरथुस्त्री धर्म ग्रंथ 'पवित्र अवेस्ता ' के अंतर्गत 'केवल कानों द्वारा श्रवण किया आंखों द्वारा पढ़ा ज्ञान आभ्यंतरिक ज्ञान से भिन्न होता है जो योग्य गुरुदेव के उपदेशों द्वारा उपलब्ध होता है इसी कारण इसे एस 'गोशोस्त्रु ते खेरद' (बाह्यज्ञान) की जगह 'अस्ति देह खेरद(अर्न्त ज्ञान) जैसा एक पृथक नाम दिया गया भी पाया जाता है। 71

प्रसिद्ध सूफी हाफिज. नें कहा है "आज से चालीस वर्षो से भी अधिक समय व्यतीत हुआ जब मैने 'पीर मुगा' के क्षुद्रतम सेवको में अपनी गणना करके बड़े गर्व का अनुभव किया था । "72– "अरे शेख ,मुझसे तुम इस बात की आपत्ति न करो कि 'मैं पीर मुगा' का मुरीद'शिष्य हो चुका हूँ । तूनें मुझे ईश्वर की प्रप्ति के लिये केवल वचन मात्र दिया था । उसनें वस्तुतः ऐसा कर दिखया। – ईसाई धर्म के अंतर्गत तो ऐसे धर्म गुरुवों की कोई विशिष्ट परंपरा सी चली आती बतलाई जाती है जो उन उपदेश प्रदान करनें वाले विशपों की होती है जो यथावसर धार्मिक मान्यताओं की घोषणा किया करते है।

सूफी मतावलम्बियों के लिये सूफी साधना के अंतर्गत 'मुरीद' का मार्ग –प्रदर्शक 'शेख' 'पीर' अथवा 'मुर्शीद' होना अति आवश्यक माना गया है । जिसके आज्ञा पालन का उसे ब्रत लेना पड़ता है उसका पीर उसपर अपना 'तवज्जुह' तीव्रदृष्टि से काम लेता है इसप्रकार उसके भीतर काया–पलट तक

ला दिया करते है । इससे उसमें न केवल अभीष्ट आध्यात्मिक परिवर्तन आनें लग जाता है । अपितु वह अपनें व्यक्तित्व को क्रमशः इसमें मग्न कर देता है। यही शेख फिर उस मुरीद को अपनें संप्रदाय के प्रवर्तक मूल पीर के हवाले कर देता है जिसके द्वारा वह हजरत मुहम्मद को सौप दिया जाता है । अन्त में एक ऐसी भी स्थिति आ जाती है जब वे पैगम्बर उसे स्वयं खुदा को ही समर्पित कर दिया करते हैं । इस पूरी प्रक्रिया –पद्धति के अंत साधक अपनें को स्वयं परमात्म तत्व या 'खुदा' में लय करनें में ही हुआ करता है ।

गुजरात के काव्य साहित्य में अजातवाद का निरुपण सर्व प्रथम अखा में पाया गया , जिसका प्रवाह हमें गोपाल दास, बूटियो , लालदास ,कल्याणदास से लेकर संतरामदास तक प्रवाहित होता पाया गया है । अखा कृत 'संतप्रिया' 'ब्रह्मलीला' तथा एकलक्ष रमणी में गौड़ावाद के अजातवास की ही चर्चा की हुई है । संत राम कृत 'गुरुबाबनी' में भी मन को ही समस्त भेदों तथा भ्रान्तियों का कारण बताया गया है ।

अखा की विचार धारा शंकर के मायावाद से प्रभावित है । इस कवि की पकड़ अद्‌भुद है । शंकर के मायावाद के चारों रुपों आभासवाद ,प्रतिबिम्बवाद, अवच्छेदवाद , तथा दृष्टि–सृष्टि वाद का प्रभाव अखा माया संबंधी विचार सारणी पर स्पष्टतः देखा जा सकता है । मायावाद का यह प्रवाह दादू से लेकर अखा , धीरो, निरांत, प्रीतम , भाणसाहब, रविसाहब, भोजो तथा अनेक परवर्ती संतों में दृष्टिगत होता है । इस विषय को स्पष्ट एवं रोचक बनानें के लिये गुरु शिष्य संवादों के रुप में 'हस्तामलक' जैसे स्वतंत्र चिन्तनपूर्ण ग्रंथों की रचना भी की गई है ।

विशिष्टता द्वैत में जगत सत्य रुप है। । जीव अविद्या से विमोहित होकर बँध जाता है । उससे मुक्ति प्राप्त करना ही जीव का परम् लक्ष्य है । यह मुक्ति भक्ति के माध्यम से ही प्राप्त की जा सकती है । 73– डॉ. बड़थ्वाल नें संतों के आत्मा परमात्मा एवं जड़ –पदार्थ संबंधी विचारों का निरुपण करते समय तीन प्रकार की दार्शनिक विचार धारओं के अनुसार वर्गीकरण किया है

और इस प्रकार कबीर ,दादू , अखा, मलूक, आदि को अद्वैती , नानक को मतभेदी तथा शिवदयाल और प्राणनाथ आदि को विशष्टाद्वैती ठहराया गया है। 74— अतः प्राणनाथ के दार्शनिक विचारों में जीवात्मा का अंततः निवास परमात्मा में है ,फिर भी वे जीवात्मा को पूर्णरुप ब्रह्म नहीं मानते । प्राणनाथ के अनुसार परमात्मा अंशी है और जीवात्मा अंश है । 75—

गुजराती संतों मे अखा ,प्रीतम, रविसाहब, तथा निरांत पर सूफी —साधना का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है । अखा नें अपनें 'झूलड़ा ' पदों में वेदान्त तथा सूफी साधना की एकतः सूचित की है उसमें 50 प्रतिशत शब्द सूफियों की देन है । सूफी मार्ग के चारों अवस्थाओं का वर्णन अखा नें इन झूलड़ा पदों में अपनें ढ़ग से किया है । 76— यद्यपि योग की कठोर साधना के प्रति विशेष रुचि गुजरात के संतों में पाई नहीं जाती है फिर भी ,अष्टांगयोग, प्रणव मंत्र, 77— षटचक, कुण्डलिनी, ब्रह्मरन्ध्र , सहस्त्रार कमल, नाभिकमल , आदि का वर्णन मिलता है । गणपत पाम नें यहां आत्मा को जल की मछली कहा है जो भाव में गोते खा—खा कर भटक गई है । गणपतराम की 'षटचक' लावणी' इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है । इसमें कुण्डलिनी के ब्रह्मरंध्र तक पहुंचनें की स्थिति का वर्णन किया गया है । 78— अखा नें ज्ञान एवं भक्ति के साथ भक्ति के योग को साधना का विशिष्ट मार्ग एवं लक्ष्य बताया है जिसमें साधक 'आपा' हारकर परमतत्व से लौ लगाता है । 79— वस्त्रों द्वारा रचित योग साधना के पद विपुल प्रमाण में उपलब्ध होते है।

संतों की यह साधना सुरत शब्द योग अथवा सहज की ओर विशेष अभिमुख है । जहां न जप'जाप है और न ध्यान धरणा है बल्कि सहज ही 'शब्द 'ब्रह्म' का प्रकाश होने लगता है । 80— जिसनें सहजानन्द को भोगा है और जिसकी चाल अकल है वह कभी तन,मन, और धन की परवाह नहीं करता ऐसा पुरुष 'साहब का लाल ' हो सकता है । 81— अखा के मतानुसार ब्रह्मानन्द की अनुर्भूति में जो काग हष्टाहष्ट के बीच खेला जाता है , वही 'मध्यममार्ग ' अथवा

'मध्यमभाव' है । डॉ. बडथ्वाल नें इस मध्यमार्ग की चर्चा करते हुये कहा है कि निर्गुण संप्रदाय नें इस बौध धर्म को सिद्धांतो से ग्रहण किया था अखा के कथनानुसार यह प्रीतम से 'सहज संयोग' तो कर देता है किन्तु सहल नहीं । 82– अखा के दृष्टिकोण से सहल की इच्छा रखनें वाला 'देहदर्शी और सहज की इच्छा रखनें वाला 'आत्मदर्शी ' है । प्रीतम नें पद्य, सिद्ध , तथा संत इन तीन आसनों को प्रमुखता दी है जो ज्ञान के प्रकाश में सकल उपाधियों का विनाश करते हैं । निष्काम कर्मयोग का जो सुरगीता में सुनाई देता है । 83– गुजरात के संतों पर उसकी स्पष्ट छाप देखी ता सकती है । अखा की अखेगीता ' भवानी शंकर की 'ध्यान गीता' रविसाहब की भाणगीता' गोपाल की 'गोपालगीता' नाथ भगवान की 'शिवगीता' वस्तों की 'वस्तुगीता' प्रीतमदास की 'सरस गीता' इसके स्पष्ट उदाहरण है ।

1, तुलनीय – सि. सि. सं. उपदेश ।

2, अद्वैत केचिदिच्छन्ति द्वैत मिच्छन्ति चापरे ।
समतत्वं न जानन्ति द्वैताद्वैत विलक्षणं ।।
यदि सर्वगतो देवः स्थिरः पूर्णो निरन्तरः ।
अहो माया महामोहो द्वैताद्वैत विकल्पना ।। पृ. 11 श्ळ

3, वन्दे तत्रातेजो भुवन तिमिरहं भानुतेजस कर्म वा ।
सत्कर्तुव्यापकं त्वा पवन गति कर्म व्योमवन्निर्मरं वा ।।
मुद्रानाद् विशूले विमलरुचिधरं खर्परं अस्ममिश्र ।
दैर्त वाऽदूतरुपं द्वय उतपरं योगिनं शंकरं वा ।।

4.कच्चे सिद्धन माया प्यारी–बीजक, 69वी रमैनी

5. लियोनार्ड के " नोट्स आन दि कन–फटा योगीज" प्रबंध ग्रंथ में देखिये इ.ए. जिल्द 7 पृ.299

6. "नाथ योगियो और भक्तों की तुलना" देखिए –कबीर,पृ.153–54

7. कवितावली, उत्तरकाण्ड ,पृ. 84

8. राजगुह्य में – नकारोंऽनादि रुपं थकारः स्थाप्यते सदा।

भुवनतयमेवैकः श्री गोरक्ष नमोऽस्ततु।।

9. शक्तिसंगम तंत्र में – श्री मोक्षदानदक्षत्वात् नाथ ब्रह्मातुबोधनात्।

स्थगिताज्ञान विमातश्रीनाथ इति गीयते।।

शक्तिसंग्रहतंत्र बड़ौदा सीरीज 91 –के ताराखण्ड में आदिनाथ और काली के संवाद से ग्रन्थ आरम्भ होता है ये आदि नाथ स्वयं शिव ही हैं।

10. सुधाकर चन्द्रिका–28,पृ.239

11. हठयोग प्रदीपिका, पृ. 4

12.ललिता सहस्त्र नामः ,पृ.15

13. तारा रहस्यः, पृ.115

14.काला वलीतंत्र, पृ.76

15.श्यामा रहस्य,पृ.24

16.कौलमार्ग रहस्यः ,पृ.4–6

17. गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह ,पृ.71

18. गो.सि.सं.,पृ.13

19.सिद्ध सिद्धान्त संग्रह, 4 |30।।

20.सिद्ध साहित्य सं. डॉ. धरमवीर भारती,प्रथम संस्करण 1955,पृ.195–96

21.1 मुरिद पर फर्ज हैं किव अपने मुर्शिद को खुदा माने जब तक नहीं मानेगा,कार्य पूर्ण नहीं होगा।–सारवचन राधास्वामी वार्तिक भा. 2,पृ.198

22.वह भेद सतगुरु भक्त की सेवा एवं शरण से मिल सकता है क्योकि उस संत ने आप स्वयं सतगुरु रुप धरा हैं।– वही पृ.225

23.गुरु रुपधरा राधास्वामी,गुरु से बड़ नहीं अजामी।– सार वचन राधास्वामी"नज्म",भाग 5,पृ.300

24.सतपुरुष सतनाम गुरु हैं, अलख रुप और अगम गुरु हैं। वही–पृ.304

25.अमृतानुभव" अध्याय 2,पद्य 3 ,13,37तथा 54

26.डॉ. वि.मि.कोलते: महानुभावां चा आधार धर्म ,पृ 195–96

27.Pathway to God in Kannada Literature,P.61

28. वही पृ. 62

29.वही पृ.63

30." प्रभुदेव वचनामृत" ,का .ना.प्र.सभा,पृ.36

31.वही ,पृ.37

32.चर्यापद " सं. डॉ. बागची", च.21,पृ.128

33 वही, च. 28,पृ.133

34.वही, च. 48,पृ.114

35.वही ,च. 34, पृ.140

36.वही,च. 36,पृ.142

37.धम्मपदट्ठकथा" अप्रकाशित

38.आज्ञाभई अकाल की , तभी चलायो पंथ।

जो प्रभु को मिलने चहै, खोज शबद में वेह

" उ.सं. प.पृ. 399

39.नानक अंगद ना वपुधरा,——————साधनि लखा मूढ़ नहीं पायो।।

विचित्र नाटक ,5वा अध्याय ,चौ. 7,9,पृ. 108,109

40. ताम कुत्तिथई परिचयई धुप्रिम ताम करति। गुरुहु पसाएं नाम न विदेहहं देऊ मुणति। –पाहुड़ दोहा ,0,पृ.24

41.वही, दोहा,166,पृ. 50

42.वही,दोहा , 1,पृ. 2

43.वही,दोहा,27,पृ.10

44.गुरु जिणंवरु गुरु सिद्ध सिउ , गुरु रतणमय सारु। सोदरि सावइ अप्प परु आणंदा,भव जल पावऊ पारि।। आनंद तिलक, पृ.36

45.अष्टपाहुड़ गाथा, 104, 124

46.डॉ. मलिक मोहम्मद"आलवार भक्तों का तमिल प्रबंधम् और हिन्दी कृष्ण काव्य,पृ,167 उधृत।

47.वही।

48.A Govindacharya:The Divine wisdom of the Dra\ Saints(Madras,1902) P.37.

49.स्वदेहे गुरुजीवनम् सीपयेगुरु "अध्याय 1,

50. वही।

51.भक्ति नारदी मगन सरीरा, इहि विधि भवतिरि कहै कबीरा।

कबीर ग्रं., पद 278, पृ.183

52. 2,8 वही पृ. 19 –20

53.वही,28 पृ.22–23

54.गुरुपूजां विना देविं स्वेष्टपूजां करोतियः

मंत्रस्य तस्य तेजांसि हरवे भैरवः स्वयम्।।

कालीविलास तंत्र"1–13"

55.कठोपनिषद,अध्याय,1,वल्ली 2 ,मंत्र 5

56."कल्याण" उपासना–अंक,वर्ष 2,संख्या1, पृ.626 पर उद्धृत

57.खेताश्वतर उपनिषद,अध्याय 6,मंत्र 23।

58.अज्ञावतीविरान्धस्य ज्ञानाच्जनरालाकया।

चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः।।

59.Philosophy of Zorostrianism etc.(by F.K.Dalchandji) 1,P.659

60.वही,पृ.25

61.'रामानुजाचार्य विशिष्टाद्वैतिक भक्तिदर्शन' –डॉ. सरनामसिंह शर्मा,पृ.6

62.हि.का.नि.स.पृ.166–200।

63.ब्रह्मबानी पृ. 1।

64. अखाकृत झूलणा–12 ।

65. छोटम की वाणी ग्रन्थ 1,पृ.226 ।

66.'भजन सागर'पृ.233–235.पद.160–166 ।

67.'अक्षयरस' 6–25,

68.रविसाहब,र.भा.स.वा.,पृ.260 ।

69.अखा साखी 'लालच को अंग'– 1 ।

70.अखा साखी,कीया अंक–15 ।

71.अखा साखी,देहदर्शी को अंक– 16 ।

72.प्री.दा.सा.'जोग को अंक' 23 से 25 ।

73.' गीता' 2–47